Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

उत्तर वैदिक काल में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन

Rahul Ranjan Singh[1]* Dr. Deben Kalita[2]

[1] Research Scholar, Department of History

[2] Assistant Professor, CMJ University, Shillong, Meghalaya

सार – *वैदिक युग का प्रारंभ ऋग्वेद से माना जाता है। इस युग में वेदों की रचना हुई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस काल के ऋषियों ने संपूर्ण ज्ञान, तपस्या और योग बल से प्राप्त किया था। किसी भी देश का अतीत उसकी वर्तमान और भावी प्रेरणा का मूल स्रोत होता है। प्राचीन भारत की यह विशेषता है कि इसका निर्माण राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुआ था। जीवन में प्रायः सभी अंगों में धर्म का प्रधान्य था। भारतीय संस्कृति धर्म की भावनाओं से ओतप्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन की जो व्याख्या की तथा अपने कर्तव्यों का जो विश्लेषण किया वह सभी उनके वृहत्तर अध्यात्म ज्ञान की ओर संकेत करता है। उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक वास्तविकता केवल भौगोलिक सीमाओं के अंतर्गत ही बंध कर नहीं रह गई, उन्होंने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और 'सर्वभूत हीते रतः' होना ही अपना कर्तव्य समझा।*

कुंजी शब्द – *राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र, वैदिक युग*

----------X----------

परिचय

वैदिक काल

वैदिक कालीन जन परस्पर युद्धरत रहते थे। ऋग्वेद में एक स्थान पर दस राजाओं के युद्ध का उल्लेख मिलता है, जो भरत जन के राजा सुदास के साथ हुआ था। इनके विरूद्ध दस राजाओं का संघ था। जिनमें युद्ध, अनु, दुहत, पुरू एवं तुर्वस के अतिरिक्त अनिल, पक्थ, भलानाशे, शिवि तथा विषाणिन जन के राजा सम्मिलित थे।4 इन जनों के पारस्परिक युद्धों के कारण ही जनपदों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते कुछ छोटे जन (अनु. द्रहयु. भरत, पुरू) विलुप्त हो गये और उनके स्थान पर कुरू, पांचाल, कौशल, काशी, मगध, विदेह, अंग जैसे बड़े-बड़े जनपदों का उदय हुआ।

वैदिक कालीन इन छोटे-बड़े जनपदों की शासन पद्धति एक जैसी नहीं थी। वैदिक साहित्य में विभिन्न शासन पद्धतियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल मंे राजतंत्र ही लोकप्रिय शासन तंत्र था। परन्तु वैदिक साहित्य में गणतंत्र राज्यों का भी उल्लेख मिलता है एतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका में विभिन्न शासन पद्धतियों का उल्लेख मिलता है।5 एतरेय ब्राह्मण में इनके शासकों के नामों का भी उल्लेख मिलता है।6 लेकिन इनका विस्तृत उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। इनका विवरण यत्र-तत्र उपलब्ध संकेतों के आधार पर ही दिया जा सकता है।

वैदिक काल का दूसरा एवं अंतिम चरण 'उत्तर वैदिक काल' कहा जाता है। इस काल की अवधि ईसा पूर्व लगभग 1000 से आरम्भ होती है। उत्तर वैदिक काल के अध्ययन के लिए यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। इनकी रचना ऋग्वेद के बाद हुई। यजुर्वेद में सूक्तों का संकलन है। सूक्तों के अलावा यजुर्वेद में धार्मिक अनुष्ठान भी वर्णित हैं। वैदिक संहिताओं की रचना के पश्चात कुछ विशेष प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई जिन्हें ब्राह्मण ग्रन्थ कहा जाता है। यह ग्रन्थ अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों का संकलन है। इन अनुष्ठानों की रचना धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर की गयी है।

उत्तरवैदिक कालीन समाज

उत्तर वैदिक कालीन समाज और संस्कृति के विषय में वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों से भी जानकारी प्राप्त होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद-मन्त्रों का विस्तार से अर्थ, भाष्य, प्रयोग और आख्यान दिया गया है। साथ ही साथ इसमें यज्ञ-यागादिकों के विधानों का भी सविस्तार विवेचन भी देखने को मिलता है। इसमें तत्कालीन समाज और धर्म के विभिन्न पक्षों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में

www.ignited.in

ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण अधिक विख्यात हैं। इन ग्रन्थों में उत्तर वैदिक कालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया गया है। इनसे प्रारंभिक हिन्दू समाज के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है ।

ऋग्वेद में ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड दो विषय वर्णित हैं। कर्मकाण्ड का विकास ब्राह्मण ग्रन्थों में है और ज्ञान काण्ड का विस्तार उपनिषदों में है।

उपनिषदों में आत्म विद्या का चिन्तन है। इस चिन्तन से जीवात्मा मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

निश्चय ही ऋग्वेद में वर्णित राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था का चित्र परवर्ती, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषदों में चित्रित अवस्था से भिन्न हैं। समग्र प्राचीन साहित्य परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी उनकी वर्ण्य वस्तु में अन्तर होता गया है। जीवन, जीवन का लक्ष्य, सभ्यता और संस्कृति मे अन्तर है। अतः उत्तर वैदिक काल की संस्कृति के अध्ययन के लिए ऋग्वेद अनन्तर विकसित समग्र वैदिक साहित्य के अध्ययन की सामग्री है।

ऋग्वैदिक संस्कृति का मूल केन्द्र पंजाब से पूर्व की ओर सरस्वती और दूषवती नदियों के मध्य भाग तक सीमित था। इसे मनु ने ब्रह्मावर्त कहा है

सरस्वती हषद्वत्यावनद्योर्यदन्तरम् ।

तं देव निर्मित देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते।।(2/17)

किन्तु इसी काल में ऋग्वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र कुरूक्षेत्र तक विस्तृत हो गया था। आर्यों के राज्य की सीमा का विसतार कुरू-पांचाल देश तक हो गया था। अतः कभी-कभी इसी को कुरू-पांचाल संस्कृति भी कहा जाता है, किन्तु परवर्ती काल में पूर्व में मगध (दक्षिणी बिहार), कोसल (मगध), काशी, विदेह (उत्तरी बिहार), अंग (पूर्वी बिहार) आदि तक आर्यों के फैलाव में इन स्थानों को

पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी, पेशावर आदि जिलों में स्थित, आजकल पाकिस्तान का भाग, केकय-गान्धार के पूर्व में व्यास नदी तक, यह राज्य फैला हुआ था। मद कश्मीर, काँगड़ा, और अमृतसर पर्यन्त यह राज्य था। उशीनार-उत्तर प्रदेश का उत्तरी भाग । मत्स्य-अलवर, जयपुर, भरतपुर के निकटवर्ती क्षेत्र। पाञ्चाल-उत्तर

प्रदेश के बरेली, बदायूँ, फर्रुखाबाद आदि जिले इस राज्य के अन्तर्गत आते थे। काशी-वाराणसी के आसपास का क्षेत्र। कोसल-अवध इसकी राजनधानी अयोध्या थी। इनके अतिरिक्त विदर्भ (बरार) कलिंग, अश्मक, दण्डक आदि भी सुव्यवस्थित राज्य थे। इन सभी राज्यों का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों और विशेषतः उत्तरवैदिक कालीन राज्यों में सर्वाधिक विकसित कुरूक्षेत्र और पांचाल राज्य थे। यह राज्य अधिक सुसंस्कृति थे, और यज्ञ करने वाले थे। यहाँ अनेक विद्या-केन्द्र भी थे, जहाँ अध्ययन करने के लिए दूर-दूर से छात्र आया करते थे। अथर्ववेद के अनुसार आर्य मगध और अंग राज्य वालों को घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि इन दोनों राज्यों के वासी न यज्ञ करते थे, न संस्कृत का अध्ययन करते थे और न ब्राह्मण धर्म पर विश्वास ही करते थे। यह अनार्य थे, आर्यो की अशुभ कामना करते थे।

प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में तीसरा स्थान वैश्यों का था। उत्तरवैदिक काल में इस वर्ग का समाज में विशेष महत्व था। तैत्तिरीय संहिता में यह उल्लेख देखने को मिलता है कि वैश्य समुदाय पशुपालन और अन्नोत्पत्ति करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण इस समुदाय की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहता है कि दैव. युग में वैश्य वर्ग में काफी परिवर्तन हो चुका था।

विवेच्य युग में सामाजिक स्तरीकरण में शूद्रों का चैथा स्थान था। उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में वैश्य शब्द का अनेको बार प्रयोग हुआ है। सामान्यता शूद्रों को तीनों वर्गों का सेवक कहा गया है। इस युग में वैश्य एवं शूद्रं व्यवसायिक दृष्टि से लगभग सामान्य स्थिति में पहुँच चुके थे जिसके परिणाम स्वरूप वैश्य एवं शूद्र एक दूसरे के निकट आये। शतपथ ब्राह्मण सोम यज्ञ में शूद्र को भाग लेने का अधिकार देता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण23 में उस धार्मिक क्रिया का उल्लेख देखने को मिलता है जिसके द्वारा रथकार के लिए यज्ञ की अग्नि की स्थापना की जाती है। लेकिन ओम प्रकाश जी अपनी पुस्तक 'प्राचन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास' में लिखते हैं कि उत्तरवैदिक काल में शूद्रों की उंदपंद स्थिति दयनीय हो गयी थी। उनका कार्य समाज के तीन उच्च वर्गों की सेवा करना था। राजा उन्हें कर्तव्यों की अवहेलना के अपराध में पीट भी सकता था। इतिहासविद रोमिला थापर जी का मत है कि उत्तरवैदिक काल में आर्य अनार्यों के साथ रहते थे और दोनों की संस्कृतियों में समन्वय था।

उत्तरवैदिक कालीन वैवाहिक व्यवस्था का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि विवेच्य युग में वर्ण व्यवस्था के अन्दर

विवाहों के दो रूप थे। अनुलोम विवाह एवं प्रतिलोम विवाह । अनुलोम विवाह के अन्तर्गत उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से निम्नवर्ण की कन्या से विवाह करना तथा प्रतिलोम विवाह से आशय था निम्न वर्ण के पुरुष का अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह करने से था। चाण्डाल को प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान माना गया है। प्रतिलोम विवाहों के द्वारा उत्पन्न संतों को संकर जाति माना गया है। उत्तर वैदिक काल में चार नियमित वर्गों के अतिरिक्त साठ वर्ण संकर जातियाँ वजूद में आ गयी थीं।

उत्तर वैदिक काल में सामाजिक परिवर्तन:

उत्तरवैदिक काल एक प्रकार से सामाजिक परिवर्तनों का युग कहा जाता है। इस युग में वैदिक युग की अपेक्षा आर्यों का प्रसार सप्तसिन्धु से पूरब की ओर त्वरित गति से होने लगा। अनार्य इस युग में पराजित होकर या तो पीछे भोग या आर्यों द्वारा बन्दी बना लिये गये जो बाद में आर्यों के यहाँ भृत्य का कार्य करने लगे। इस प्रकार आर्यों के समाज में सेवक के रूप में अनार्यों का प्रवेश हुआ जो पूर्व वैदिक युग की भांति शूद्र नामक चैथे वर्ण के रूप में गृहीत किये गये । ऋग्वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ था किन्तु इस व्यवस्था का विकसित स्वरूप उत्तर वैदिक काल में देखने को मिलता है। वस्तुतः सामाजिक आवश्यकताओं की दृष्टि चातुर्वर्ण का विकास इंसी युग से प्रारम्भ हुआ, जो उनके व्यवस्थापन का काल था। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के समान इस युग में भी चारों वर्गों की सुख-सुविधाओं का हमेशा ध्यान रख जाता था। उस समय यह मान्यता प्रचलित थी कि जिस राजा के शासनकाल में ब्राह्मणों को कुछ कष्ट पहुँचता है तो जल में टूटी हुई नाव की भांति उस राजा का राज्य विनष्ट हो जाता था।

इस युग में क्षत्रियों की तुलना में ब्राह्मणों को निःसंदेह उत्कृष्ट घोषित किया गया। इस युग में ब्राह्मण अपने ज्ञान, धार्मिक कृत्यों और मंत्रों के कारण समाज में प्रबल स्थिति में था। वह अपनी प्रार्थनाओं एवं यज्ञों के द्वारा राजाओं के सुरक्षित रहने की कामना करता था। ऐतरेय ब्राह्मण में यह उल्लिखित है कि पुरोहित के बिना अर्पित की गयी राजा की आहुतियां देवताओं को स्वीकार नहीं थीं। उस युग में ब्राह्मण ही प्रायः पुरोहित हुआ करते थे। राजसूय यज्ञ जैसे समारोहों की सम्पन्नता बिना ब्राह्मण के स्तुतिगान के सम्भव नहीं था। शतपथ ब्राह्मण में यह उल्लेख देखने को मिलता है कि ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त सत्ता से ही राजा शासन करता था। उत्तरवैदिक काल में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्गों में पूर्ण सहयोग-भावना की कामना की गयी है। शतपथ ब्राह्मण में दान स्वीकार करने और वंश की शुद्धता को बनाये रखने के लिए भी निर्देश दिया गया है। सबके द्वारा अस्वीकार की गयी वस्तु को ब्राह्मण को न ग्रहण करने के लिए कहा गया है। ब्राह्मणों की पवित्रता एवं शुद्धता इसी में थी कि वह अपने आचरण एवं कर्म को मनोनिवेश पूर्वक करता रहे।

उत्तरवैदिक युगीन समाज में ब्राह्मणों की हत्या जघन्य अपराध था। . इस युग में ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड से मुक्ति, याज्ञिक कार्य करना, पौरोहित्य करना आदि विशेषाधिकार प्राप्त थे। इसके बावजूद स्वामी के प्रति विश्वासघात करने पर ब्राह्मण भी दण्ड का भागी होता था। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण को सभ्यता का प्रकारक माना गया है। ब्राह्मण अपने ज्ञान व आचरण से समाज के उत्थान में अद्वितीय योग प्रदान करता था। ब्राह्मणों का प्रमुख कार्य अध्यापन एवं यज्ञिक कार्य था। ब्राह्मणों के लिए विद्यार्थी जीवन आवश्यक था। सत्यकाल जाबाल की कथा इसी प्रकार की है। आचार्य हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर उसने गुरूकुल में प्रवेशार्थ प्रार्थना की। इस पर गुरू ने उसके वंश के विषय में पूछा, जिसका उत्तर देते हुए सत्यकाल जाबाल ने कहा था कि उसे अपने गोत्र का पता नहीं, क्योंकि उसकी माँ जब परिचारिका वृत्ति में थी तभी उसका जन्म हुआ था। इस सत्योक्ति से आचार्य प्रसन्न होकर उस अज्ञातपितृ सत्यकाल से कहा कि वह जाकर समिध लाये, क्योंकि सच्चे ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई भी इतना सत्य नहीं बोल सकता। इसके पश्चात गौतम ने उसको उपनीत करके अपना विद्यार्थी बना लिया। यही सत्यकाल जाबाल कालान्तर में चलकर स्वयं विख्यात आचार्य बना। उस काल के गुरूकुल में अध्ययन के लिए ब्राह्मणों को ही प्रवेश मिलता था। उस आचार्य प्रसन्न होकर उसे गुरूकुल में प्रवेशित किये थे।

प्रधा में 'चौथा' स्थान था। परिचारिका वृत्ति इसका प्रमुख कार्य था। इस समुदाय का प्रधान कार्य परिचारिका-वृत्ति थी। पारिवारिक भृत्य के रूप में यह समुदाय कार्य करता था। शूद्रों के सबंध में कहा गया है कि शूद्र चाहे कितना ही वैभव-समन्वित हो, वह एक दूसरे का भृत्य होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। शूदों का अपने से ऊँचे वर्ण वालों की सेवा करना और परिचारिका वृत्ति करना उसका प्रधान कर्तव्य था।

उत्तर वैदिक काल में क्रान्तिकारी परिवर्तन स्वरूप कुछ ऐसे शूद्र भी हुए हैं जो वर्णव्यवस्था के लचीलेपन का लाभ उठाते हुए तत्कालीन समाज में अपना एक सम्मानजनक स्थान स्थापित करने में भी सफल हुए हैं। इस युग में कई विख्यात विद्वान एवं ऐसे ऋषियों के नाम देखने को मिलते हैं जो शूद्रो से उत्पन्न हुए थे। उदाहरण स्वरूप पराशर ऋषि श्वपाक नारी

से, व्यास ऋषि धीवर कन्या से, वशिष्ठ ऋषि गणिका से, कवि जाबाल चाण्डाल नारी से, ऋषि मदनपाल नाविक स्त्री से जन्मे थे। छोदोग्य उपनिषद से विदित होता है कि जनश्रुति शूद्र था, जिसे प्राण और वायु ज्ञान महर्षि रैक्व ने सिखाया था ।

उत्तरवैदिक काल में आर्थिक परिवर्तन:

हर युग में मानव समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख-सुविधाओं पर निर्भर करता रहा है। व्यक्ति का लौकिक सुख उसके जीवन के आर्थिक विकास से प्रभावित होता रहा है। यह सही है कि समय-समय पर मनुष्य के आर्थिक कार्यक्रम उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप घटते-बढ़ते और कभी-कभी परिवर्तित भी होते रहे हैं किन्तु आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि, पशुपालन और व्यापार रहा है। वर्तमान युग में भी विश्व का समाज इन्हीं आधारों पर टिका हुआ है। यद्यपि निश्चित स्थितियों के अन्तर्गत कृषक और औद्योगिक वर्ग के सदस्यों द्वारा निश्चित कार्यक्रम की अपेक्षा की जाती रही है। इसके बावजूद यह भी सत्य है कि निश्चित परिस्थितियों के कारण उनके कार्यक्रमों में समयानुसार संशोधन और परिवर्धन भी होते रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक जीवन को उत्प्रेरित करने वाली यह प्रवृत्तियां प्रत्येक युग में सहज रूप से स्वभावतः उद्भूत होती रही हैं, जो समाज को पुष्ट और स्वस्थ बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान करती रही हैं तथा इससे व्यक्ति और समाज का विकास स्वाभाविक गति से होता रहा है। संसार में आर्थिक कार्यक्रम व्यक्ति का मानवीय सम्बन्ध ही नहीं बल्कि एक प्राकार से सामाजिक सम्बन्ध भी अभिव्यक्त करता है। व्

यक्ति अपने कार्यों और योजनाओं से अपनी तथा अपने परिवार और अपने समाज की आवश्यकतओं की पूर्ति करता है। वांछित वस्तुओं की ग्राह्यता और उसके उपयोग वस्तु के उत्पादन अथवा व्यवस्थित रूप में सुलभता के लिए किये जाने वाले प्रयत्न से सम्बद्ध माना जाता है, जो व्यक्ति का मानवीय स्वरूप उद्घाटित करता है। अपने आर्थिक प्रयत्नों और योजनाओं से मनुष्य अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जिससे उसका भरण-पोषण होता है। इसके अन्तर्गत वह भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य वांछित पदार्थों को भी ग्रहण करता है।

उद्योग तथा उनकी उत्पादित वस्तुएं और लाभ प्राप्त करने के निमित्त सेवाओं का शोषण भी समाज में होता रहता है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में 'धीन' और 'निर्धन' दो वर्ग बन गये, जिसके कारण प्रत्येक समाज प्रभावित होता रहा। आगे चल कर मानव समाज में 'धनी' और 'निर्धन' वर्ग विकसित हुए। इन्ही आर्थिक वैषम्य के परिणाम स्वरूप समाज में किन्तु इसके विपरीत समाज में कुछ ऐसे भी लोग थे जो 'मापक' और 'अर्ध-मापक' ही कमा पाते थे तथा किसी प्रकार अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने में सफल होते थे।

अध्ययन का उद्देश्य

1. उत्तरवैदिक काल में आर्थिक परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन

2. वैदिक कालीन भारत में सामाजिक आर्थिक विकास का अध्ययन

निष्कर्ष

समकालीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पुरू और भरत नाम के दो कबीले आपस में मिल कर 'कुरुजन' कहलाने लगे। कुरुजन अपने निकटवर्ती बहुत से कबीलों को हराकर उनके राज्यों पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात अपने राज्य का विस्तार आधुनिक दिल्ली, थानेश्वर और यमुना गंगा के पास समतल क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया। कुरू कबीला के नाम पर यह क्षेत्र 'कुरूक्षेत्र' कहलाने लगा। शासन करने के दृष्टिकोण से कुरुजन अपनी राजधानी जिस स्थान पर बनायी वह हस्तिनापुर के नाम से जाना जाने लगा। यह स्थान वर्तमान समय में मेरठ जिला में स्थित है। उत्तरवैदिक काल के अंतिम चरण में आर्य 'कोसल' और 'विदेह' में बसना शुरू कर दिये थे। विदेह बिर के उत्तरी भाग में स्थित था। इसकी राजधानी मिथला थी। विदेह शब्द का नामकरण किसी आर्य कबीले के सरकार के नाम पर पड़ा है। 'शतपथ ब्राह्ममण' के अनुसार आग धरती को जलाती हुई पूरब की ओर बढ़ती गयी। जब आग सदानीरा नदी के पास पहुंची तो वहाँ रुक गयी। सदानीरा नदी आधुनिक गंडक नदी के रूप में यथावत प्रवाहित हो रही है। सदानीरा का शाब्दिक अर्थ होता है, वह नदी जिसमें हमेशा जल भरा रहे। उत्तरवैदिक कालीन राज्यों में 'कैकय' राज्य प्रमुख राज्यों में था। कैकय राजाओं का राज्य विस्तार वर्तमान शाहपुर, झेलन एवं गुजरात के क्षेत्र में था। कैकय नरेश अश्वपति अपने न्याय के लिए यहाँ काफी प्रसिद्ध था। उत्तरवैदिक कालीन प्रान्तों में काशी राज्य प्राचीन काल से ही पवित्र स्थान माना जाता था।

संदर्भ

1. महाभारत - पं0 रामायण दत्त शास्त्री पाण्डेय द्वारा अनुदित, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1950
2. महाभारत -सुक्यंकर सम्पादित, भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1965-66
3. शतपथ ब्राह्मण - वेदार्थ प्रकाश टीका, गंगा विष्णु श्री कृष्णदास (प्रकाशक), बम्बई, 1947
4. ए0वी0 कीथ - वैदिक धर्म एवं दर्शन (अनु० डॉ० सूर्यकान्त) द्वितीय भाग मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली 1965
5. एस0अल्तेकर - प्राचीन शासन पद्धति, इलाहाबाद, 1959
6. पी0वी0 काणे - धर्म शास्त्र का इतिहास (पांच भाग) (अनु0 अर्जुन चैबे कश्यम कृत हिन्दी), लखनऊ, 1973
7. कैलाश चन्द्र जैन - प्राचीन भारतीय सामाजिक व आर्थिक संस्थाएं
8. जोहरी, मनोरमा - प्राचीन भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था, वाराणसी, 1969
9. श्याम लाल पाण्डेय - मनु का राज्य धर्म, लखनऊ, 1967
10. विमलचन्द्र पाण्डेय - प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
11. जयशंकर मिश्र - प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, कदम कुआं, पटना, 1980
12. मोतीचन्द्र - सार्थवाह (हिन्दी), पटना, 1953

Corresponding Author

Rahul Ranjan Singh*

Research Scholar, Department of History